'आधा गाँव' और साम्प्रदायिकता की समस्या

डॉ० शकुंतला,
58/9 शास्त्री नगर, लाढ़ोत रोड़,
रोहतक (हरियाणा)

राही मासूम रजा द्वारा रचित 'आधा गांव' (1966) में सांप्रदायिक समस्या पर कुछ ऐसे सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भ सामने आते हैं, जो हमारे सामाजिक जीवन से जुड़े हुए हैं। ''आज के संदर्भ में राही मासूम रजा और उनका साहित्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह सांप्रदायिकता और हर तरह के प्रतिक्रियावाद के विरूद्ध चुनौती देता है, संघर्ष के लिए प्रेरणा देता है और सांप्रदायिकता के विभिन्न पहलुओं से हमारा साक्षात्कार कराता है।''[1] यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। संपूर्ण कथानक के केन्द्र में गाजीपुर जनपद का छोटा–सा गाँव 'गंगौली' है, जो कभी सांप्रदायिक सुकून का प्रतीक था। 'आधा गांव' की कहानी किसी व्यक्ति की कहानी न होकर समय की गाथा है। (1937 से 1952 तक की गाथा)। पन्द्रह साल के इस समय में अनेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। ''यह गंगौली से गुजरकर जाने वाले समय की कहानी है। कई बूढ़े मर गए, कई जवान बूढ़े हो गए, कई बच्चे जवान हो गए और कई बच्चे पैदा हो गए। यह उम्रों की इस हेर–फेर में फंसे हुए सपनों और हौंसलों की कहानी है। यह कहानी है उन खंडहरों की, जहां कभी मकान थे और यह कहानी है उन मकानों की जो खंडहरों पर बनाए गए हैं।''[2]

'गंगौली' (गाजीपुर जनपद का एक गांव) पूरे कथानक का केन्द्रबिन्दु है। यह गांव कभी सांप्रदायिक सौहार्द का प्रतीक था। सांप्रदायिक मेल का उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि जब मुहर्रम के दिन ताजिये के आगे चलनेवालों की कतार हिन्दओं की हो, कब्रगाहों पर चादरें फैलाने की मनोवृत्तियाँ हिन्दुओं में भी हों तथा मियां लोग दशहरे के लिए चंदा देते थे। मंदिर बनाने के लिए मुस्लिम जमींदार जमीन देकर प्रोत्साहित करते हों फुन्नन मियां की लड़की का ताबूत हिंदुओं की मदद से ही कब्रिस्तान तक पहुंचाया जा सका था। ''रजिये का जनाजा निकला तो ताबूत फुन्नन मियां, ठाकुर पृथ्वीपाल सिंह, झिंगुरिया और अनावारूल हसन के कंधों पर था और ठाकुर कुंवरपाल सिंह का सारा परिवार जनाजे के साथ।''[3] गांव में हिंदू–मुसलमानों के परस्पर संबंधों का चित्रण कर उपन्यासकार यह बताना चाहते हैं कि सांप्रदायकिता का कोई भी आधार नहीं है।

सांप्रदायिक एकता के प्रतीक इस गांव की हवा में भी राजनीति किस प्रकार सांप्रदायिक जहर घोलने का काम करती है, इसका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है उपन्यास का कथानक। कुछ दिनों से जबसे राजनैतिक सरगर्मी तेज हुई है, गंगौली में भी परिवर्तन आ रहा है। ''गंगौली में गंगौली वालों की संख्या कम होती जा रही है और सुन्नियों, शीओं और हिंदुओं की संख्या बढ़ती जा रही है। शायद इसीलिए नुरूद्दीन शहीद की समाधि पर अब उतना बड़ा मजमा नहीं गूंजता,

[1]सं० कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : जनवादी परम्परा, पृ० 157
[2]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 11
[3]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 166

जिस तरह कभी गूंज उठता था।''[4] इस गांव का युवक अब्बास अलीगढ़ में पढ़ने गया और वहाँ से वह ढेर सारे किस्से लाने लगा। ''हिन्दुस्तान के दस करोड़ मुसलमान कायदे–आजम के पसीने पर अपना बहा देंगे . . . एक मरतबा पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान ऐश करेंगे . . . ऐश।''[5]

अलीगढ़ विश्वविद्यालय में जाने वाले लड़के विभिन्न तर्क देकर पाकिस्तान का प्रचार कर रहे थे, लीग के लिए वोट माँग रहे थे। ''पाकिस्तान न बना तो ये आठ करोड़ मुसलमान अछूत बनाकर रखे जाएंगे।''[6] उनका तर्क था कि पाक अल्लाह के नमाज के लिए पाकिस्तान की आवश्यकता है। हाजी साहब इसका उत्तर देते हैं, ''हमत अनपढ़ गँवार हैं। बाकी हमने खयाल में निमाज़ खातिर पाकिस्तान–आकिस्तान क तनिकों जरूरत ना है। निमाज के वास्ते खाली ईमान की जरूरत है। . . . अउरी कानी कउन त कहता रहा कि आप लोगन के जउन जिन्ना हैं ऊ नमाजों ना पढ़ते।''[7] ये पढ़े–लिखे नौजवान जो भी तर्क देते आम मुसलमान उसके भी बढ़िया तर्क दे देते थे। फुन्नन मियां का तर्क द्रष्टव्य है– ''कहीं इस्लामू है कि हुकूमते बन जैय हे। ऐ भाई, बाप–दादा की कबुर हियां है, चौक इमाम बाडी हियां है, खेती–बाड़ी हियां है। हम कोनो बुरबक है कि तोरे पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे में फंस जायें।''[8] वास्तव में मज़हब के आधार पर अलगाव नाम मात्र था। मज़हब अथवा धर्म दहलीज के अन्दर की चीज थी।

विवाद या अलगाव था तो केवल नगरों में। पढ़े–लिखे मध्यवर्ग में यही लोग 'विभाजन' और नफ़रत का जहर फैला रहे थे। उनकी तकरीरें कुछ इस प्रकार शुरू होती थी– ''यह तो आप लोगों को मालूम ही होगा कि आजकल पूरे मुल्क में मुसलमानों की जिन्दगी और मौत की लड़ाई छिड़ी हुई है। हालाँकि गंगौली और गंगौली की तरह हजारों भारतीय देहातों में यह स्थिति नहीं थी। हम ऐसे मुल्क में रहते हैं जिसमें हमारी हैसियत दाल में नमक से ज्यादा नहीं है। एक बार अंग्रेजों का साया हटे तो ये हिन्दू हमें खा जायेंगे। इसीलिए हिन्दुस्तानी मुसलमानों को एक ऐसी जगह की जरूरत है जहाँ वे इज्जत से जी सकें। बहुत जोशीली तकरीर थी। नतीजे में राकियों और जुलाहों के एक बड़े हिस्से ने यह तय किया कि वोट लीग को ही देना चाहिए। यह एक मज़हबी फर्ज है।''[9] मजहब के नाम पर लीग अपना प्रचार कर रही थी। लेकिन गंगौली में कुछ ऐसे भी आदमी थे, जो पाकिस्तान की आवश्यकता और लीगियों के तर्क को समझ नहीं पा रहे थे। हाजी साहब ऐसे ही व्यक्ति थे। वे सोचते हैं– ''मुसलमानों को यह एकदम पनाहगाह की जरूरत क्यों आ पड़ी है और अंग्रेजों का वह साया कहाँ है जिसकी बात इन लड़कों ने धूमधाम से की थी। गंगौली में तो अब तक कोई अंग्रेज देखा नहीं गया था। और जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब आखिर हिन्दुओं ने मुसलमानों को क्यों नहीं मार डाला? और बुनियादी सवाल यह था कि जिन्दगी–मौत खुदा के हाथ में है या अंग्रेजों और जिन्ना साहब के हाथ में?''[10] इसी प्रकार तन्नू (मेजर तनवीरुल हसन) का इस पशोपेश में होना कि ''क्या सचमुच हिन्दुस्तानी मुसलमान इस जमीन का नहीं है? वे क्यों एक वतन की जरूरत महसूस कर रहे हैं।''[11] वास्तव में ये ऐसे सवाल हैं, जो उन दिनों अनेक मुसलमानों के मन में उठ रहे थे। इसका जवाब न लीगी

[4]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 13
[5]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 58
[6]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 239
[7]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 242
[8]वही, पृ० 155
[9]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 242–243
[10]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 243
[11]वही, पृ० 250

प्रचारकों के पास था और न जिन्ना के पास। ये लोग तो इन प्रश्नों से बचकर केवल मजहबी पागलपन को ही उभार रहे थे।

तन्नू अलीगढ़ विश्वविद्यालय से आए मुस्लिम लीगियों को फटकारते हुए कहता है– ''आप जान का डर पैदा कर रहे हैं। डर की यह फ़सल हमीं को काटनी पड़ेगी। . . . गंगौली मेरा गांव है। मक्का मेरा शहर नहीं है। यह मेरा घर है और काबा अल्लाह मियां का। . . .।''[12] स्पष्ट है कि ''तन्नू मुस्लिम लीग द्वारा फैलाए जा रहे उस अफवाह का खंडन कर रहा है, जिसके अनुसार मुसलमानों को यहां के बहुसंख्यक समाप्त कर देंगे परंतु तन्नू जैसा राष्ट्रभक्त ऐसे बहकावे में न आकर अपनी जन्मभूमि गंगौली (भारत) के प्रति अपार निष्ठा प्रकट करता है।''[13]

कलकत्ता और बिहार के दंगों की खबरें गंगौली में भी आ रही हैं। धर्म के नाम पर यहां के मुसलमानों को भी उकसाने का प्रयास हो रहा है, पर फुन्नन मियां यह नहीं समझ पाते कि चार सौ साल पहले हिंदुओं को तकलीफ देने वाले बादशाह की करतूतों की सजा आज के मुसलमानों को क्यों मिल रही है या कलकत्ता के मुसलमानों ने गुनाह किया है तो उसके दोषी बारिखपुर के मुसलमान कैसे हो गए? पाकिस्तान का जहर फैलाने के बावजूद बारिखपुर के मुसलमानों को बचाने के लिए ठाकुर जयपाल सिंह तैयार हैं तो फुन्नन मियां ने भी सैयदों के खिलाफ ठाकुरों का साथ देकर बिरादरी–बाहर हो जाना स्वीकार किया पर सम्बन्धों में दरार न पड़ने दी।

जिस प्रकार गंगौली के मुसलमान मुसलिम संप्रदायवादियों की बातों को तर्कपूर्ण ढ़ंग से अस्वीकार कर देते हैं। उसी प्रकार वहां के हिन्दू भी हिंदू संप्रदायवादियों को अपने प्रश्नों से निरूत्तर कर देते हैं। मास्टर साहब ने छिकुरिया को बहुत समझाना चाहा कि इमाम साहब मुसलमान थे या मुसलमान मलिच्छ, उन्होंने हिन्दुस्तान के मंदिरों को तहस–नहस कर दिया है, औरंगजेब बादशाह ने हिंदुओं पर जुल्म किया था, पर ये बातें उसके गले से नीचे नहीं उतरती। उसका एक ही जवाब था– ''हम औरंगजेब के ना जानी ला। . . . बाकी हम जहीर मियां और कबीर मियां और फुस्सू मियां और अनवारुल हसन राकी के जानी ला। हम ना मानब आपकी बात। और जेकर नाम आप लेत बाड़ी, ऊ सार होई कौनो बदमाश। जमींदारन के जुलुम के हम ना कहत बाड़ी। बाकी जेहके पास जमींदारी होई उहके जुलुम जरूर करे के पड़ी। . . . औरी मियंदू लोग जमींदारे हौवन।''[14]परिणामस्वरूप गांव से क्रोधित हिंदुओं की भीड़ मुसलमानों के खून से भारतभूमि को धोने और उनका घर जलाने पहुंची। लेकिन उधर मुसलमानों की सुरक्षा के लिए ठाकुर जयपाल सिंह के साथ गांव की तमाम लाठियां पहुंच चुकी थीं। इन्हें देखकर भीड़ अपने आप छंट गई। ठाकुर साहब ने केवल भीड़ को ही नहीं हटाया बल्कि मुसलमानों की हर तरह से सुरक्षा भी की। कहा जा सकता है कि अमानवीयता की इस आँधी में भी कहीं–कहीं मानवता का दीपक दिखाई देता है, जो ठाकुर जयपाल सिंह के रूप में सामने आता है।

सांप्रदायिक शक्तियां ऐसा माहौल तैयार कर देती हैं कि उन पर सांप्रदायिक उन्माद हावी हो जाता है और वे सांप्रदायिकता का शिकार हो जाते हैं। परिस्थितियों का जाल उन्हें असमंजस की स्थिति में डाल देता है। उपन्यासकार कुछ ऐसी ही परिस्थितियों का वर्णन करते हुए लिखता है– ''कई स्वामियों के दौरा करने के बाद भी यह बात उनकी समझ में नहीं आई कि अगर गुनाह कलकत्ता के मुसलमानों ने किया है, तो बारिखपुर के बफाती, अलावपुर के घुरऊ, हुँडरही के

[12]वही, पृ० 251
[13]नामदेव, भारतीय मुसलमान : हिंदी उपन्यासों के आइने में, पृ० 67
[14]राही मासूम रज़ा, आधा गांव, पृ०

घसीटा को, यानी अपने मुसलमानों को सजा क्यों दी जाए ? उनकी समझ में यह भी नहीं आ रहा था कि जिन मुसलमानों के साथ वह सदियों से रहते चले आ रहे हैं, उनके मकानों में आग क्यों और कैसे लगा दी जाए ? उन मुल्ला को कोई कैसे मारे जो नमाज पढ़कर मस्जिद से निकलते हैं तो हिन्दू–मुसलमान सभी बच्चों को फूँकतें हैं ? . . . सिर्फ इस जुर्म पर किसी को क़त्ल कर देना या किसी का घर फूँक देना कि कोई मुसलमान है, उनकी समझ में नहीं आ रहा था।''[15]

''सांप्रदायिक ताकतें केवल हिंदी–उर्दू का ही भेद खड़ा नहीं करती, तरह–तरह की अफवाहों और हथकंडों का सहारा लेकर वे हिंदू–मुस्लिम एकता को तोड़ने की कोशिश करती हैं। मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ता गांव में आकर इस्लाम के नाम पर अलग राष्ट्र बनाने का प्रचार करते हैं। दूसरी तरफ पं० मातादीन और स्वामी जी 'मलेच्छों को भारतवर्ष से बाहर निकालने' और 'उनके खून से पवित्र भूमि' को धोने की गुहार लगाते हैं। दोनों तरह ही सांप्रदायिक ताकतों की घिनौनी कोशिशों को बेनकाब करके राही जी न प्रगतिशील भूमिका निभाई है।''[16]

सांप्रदायिकता के इस माहौल को तैयार करने में आर्थिक कारणों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तत्कालीन संयुक्त प्रांत के ज्यादातर जमींदार मुस्लिम समुदाय के ही थे। मुस्लिम लीग यह प्रचार करती है कि कांग्रेस ज़मींदारी प्रथा तोड़ देगी क्योंकि ज्यादातर जमींदार मुसलमान हैं। लीग का यह नारा अपना काम कर जाता है। अंततः भारत का विभाजन हो जाता है। पाकिस्तान का बनना गंगौलीवासियों के लिए एक बुरा स्वप्न था, जो पूरा हो गया। इस संदर्भ में तन्नू ने कहा था– ''नफरत और ख़ौफ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज़ मुबारक नहीं हो सकती। पाकिस्तान बन जाने के बाद भी गंगौली यहीं हिंदुस्तान में रहेगा और गंगौली फिर गंगौली है। तब अगर गयवा अहीर, लखवा चमार और छिकुरिया भर ने आपसे पूछा कि उन्होंने तो आपसे कभी दुश्मनी नहीं की थी, फिर अपने पाकिस्तान को वोट क्यों दिया, तो आप क्या जवाब देंगे?''[17]

भारत विभाजन के बाद गंगौली में रोज नई–नई खबरें आने लगी। साम्प्रदायिक दंगों की खबरें भी उनमें शामिल थी। जैसे–जैसे पाकिस्तान से हिन्दुओं की पूर्णता लूटकर वहाँ से खदेड़ने का प्रयास किया जाने लगा वैसे–वैसे भारत के मुसलमानों को भी लूटकर खदेड़ने का प्रयास किया जाने लगा। राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास में इन सभी घटनाओं का बड़ा यथार्थ वर्णन किया है। ''चारों तरफ इतने बड़े–बड़े शहर धाँय–धाँय जल रहे थे कि उस आग में बच्छन और सगीर फातमा एक तिनके की तरह पड़ी और भक से उड़ गई। दिल्ली, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता, ढ़ाका . . . जलियावाला बाग, हाल बाजार, उर्दू बाजार, अनारकली का नाम सगीर फातमा था, या रतनी कौर या नलिनी बनर्जी था – अनारकली की लाश खेत में थी, सड़क पर थी, और उसके नंगे बदन पर नाखूनों और दाँतों के निशान थे। और लोगों ने खून से भीगे हुए गरारों, शलवारों और साड़ियों के टुकड़ों को यादगार के तौर पर हाफ़ज़े के संदूकों में सैंत–सैंतकर रख लिया था। मदीना दिल्ली था। मदीना लाहौर था। मदीना हिन्दुस्तान था। मदीना पाकिस्तान था और मदीना लूट रहा था।''[18]

उपन्यासकार पाकिस्तान गए मुसलमानों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं कि वे पाकिस्तान तो चले गए परन्तु वहाँ भी उन्हें अपना न कहकर शरणार्थी (मुजाहिर) कहा गया। उनकी गिनती भागकर पनाह लेने वालों में की गई। उनके

[15]राही मासूम रज़ा, आधा गांव, पृ० 275–276
[16]वही, पृ० 61
[17]राही मासूम रज़ा, आधा गांव, पृ० 251
[18]वही, पृ० 282–283

पाकिस्तान के सपने चूर–चूर हो गए। आजादी के बाद यहां के मुसलमान अल्पसंख्यक होने के कारण अकेलेपन और अलगाव की समस्याओं से ग्रस्त थे।

फुन्नन मियाँ का बड़ा बेटा मुमताज गाँव में ही अंग्रेजों की गोली का शिकार हुआ था। जब बाल मुकुन्द वर्मा सन् 1942 के शहीदों को याद कर उनकी प्रशंसा कर रहे थे। फुन्नन मियाँ उनके एक–एक शब्द को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। बहुत लम्बे समय तक बोलते रहने पर जब बाल मुकन्द वर्मा ने मुमताज का नाम एक बार भी नहीं लिया तो फुन्नन मियाँ के लिए यह तकरीर झेलना मुश्किल हो गया और वे बीच में ही खड़े होकर बोलने लगे– ''ए साहब! हियाँ एक ठो हमरहू बेटा मारा गया रहा। अइसा जना रहा की कोई आपको ओका नाम न बताइस। ओका नाम मुमताज रहा।''[19]

'आधा गांव' राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में संकीर्ण सोच के विरूद्ध हमें आगाह करता है। बहुत से लोगों के मन में यह भ्रम था कि पाकिस्तान के बनने से हिन्दू–मुस्लिम और साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान हो जाएगा। लेकिन पाकिस्तान बनने के बाद भी साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान नहीं हो पाया है।

[19]राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 287